अष्टम अध्याय

क- उदान का विशेष कार्य

ख- उदान का अर्थ और प्रायोगिक परीक्षण

ग- मस्तिष्क का आज्ञा चक्र और
उनके सहस्त्रार तक ऊर्ध्वारोहण.

======

अष्टम अध्याय

क- उदान का विशेष कार्य

कण्ठ, मुख, नासिका आदि से प्रारंभ होकर शिरपर्यन्त प्रवाहित होने वाली जीवनीवृत्ति विशेष उदान कहलाती है । ऊपर की ओर गति का वही हेतु है । रसादि के ऊर्ध्वमुख उन्नयन करने से ही इसकी उदान संज्ञा है । व्यष्टि एवं समष्टि प्राण का संयोजक यही उदान वायु है । शरीर को ऊपर की ओर उठाये रखना भी इसका एक मुख्यकार्य है । मृत्युकाल में सूक्ष्म शरीर उदान के द्वारा ही स्थूल शरीर से बहिर्गमन करता है । उदान शरीरान्तवर्ती धातुगत बोध के अधिष्ठान स्वरूप स्नायु को धारण करने वाली प्राणशक्ति है । उक्त बोध इन्द्रियों के द्वार से ऊर्ध्व मस्तिष्क पर्यन्त उठते हैं । अतः इस ऊर्ध्व प्रवाह में संयम करने पर तथा देहवर्ती समस्त धातुओं में प्रकाशशील सत्व के ध्यानपूर्वक उदान जीतने पर शरीर में लघुत्व प्रादुर्भूत होता है । यही कारण है कि उदान जयी का शरीर तूल के सदृश (हल्का) हो जाने के कारण जल में डूब नहीं सकता, कीचड़ में गंदा हो सकता तथा कांटों अथवा तलवार की भी धार पर भी सुखपूर्वक चल सकता है, वे उसे छेद नहीं सकते । जिस प्रकार वह सामान्य रीति से रम्य भूतल पर विचरण करता है, उसी प्रकार जल, पंक, कण्टकादि के ऊपर भी चल सकता है । यह उदान ऊर्ध्वगामिनी प्राणशक्ति है । अतः सुषुम्नागत उदान को संयम द्वारा स्ववश कर लेने पर देवयान या आर्चिरादि मार्गों (पितृयान और देवयान) द्वारा इच्छानुसार ब्रह्मलोक आदि लोकों में ऊर्ध्वगति होती है इससे उसका संसार में पुनरावर्तन नहीं होता है । पुनरावर्तन शून्य

गति, ही उत्क्रान्ति कहलाती है ।[1]

ख- उदान का अर्थ और प्रायोगिक परीक्षण-

"ऊर्ध्वं अनरति अनेन इति उदानः उद् + अन् + अम् + = उदान

उदान वायु कण्ठ देश में रहती है । कण्ठ प्रदेश में रहने के कारण वह वहाँ से संबंधित कार्यों को प्रबल करती है । यह वायु मुख्य रूप से लोगों के भाषण आदिकार्यों को सम्पन्न करती है ।

हृदि प्राणो, गुदेऽपान, समानो नाभि संस्थितः । उदानः कण्ठदेशे स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः । अन्नप्रवेशनं मूत्राद्युत्सर्गोऽन्नविपाचनम् । भाषणादि निमेषादि तद् व्यापाराः क्रमादमी ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उदान वायु से यह सिद्ध होता है कि जो वायु ऊपर की जाये । उदान वायु मानव मनोभावों एवं विचारों को क्रमशः मूर्तरूप देती है उच्चरणोपयोगी मानव अवयव संस्थानों के समीप पहुँचती है जिससे वह अभीष्ट विषयों को प्रस्तुत करने के लिए क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्ण एवं वाक्य का उच्चारण कर मनोद्गत भावों को प्रकाशित करता है ।

मस्तिष्क संबंधी समस्त कार्यकलापों का उद्भावनक एवं प्रकाशक यही उदान वायु है । यह कण्ठ देश में स्थित रहता हुआ जहाँ एक ओर वाक्शक्ति का निष्पादक बनता है, वहीं मस्तिष्क में चिन्तन शक्ति एवं उसके कार्यकलापों में सहयोग करता हुआ दूसरी व्यवस्था में लगता दिखाई देता है । सर्वशरीरव्यापी व्यान वायु के सहयोग से यह उदान वायु मस्तिष्क की सूक्ष्म नाड़ियों में अभिव्याप्त होकर उनमें चिन्तन की महत्वपूर्ण धारा को प्रवाहित कर सूक्ष्म तरंगों की सृष्टि करता है । यही सूक्ष्म तरंगें मन के साथ अनुबंधित होकर संकल्प विकल्पा-

---

1-वैदिक निबंधावली-डा० मुंशीराम शर्मा

त्मक रूप को प्राप्त होती है और बुद्धि के द्वारा निश्चित हो जाने पर भविष्य, को धारण कर लेती है, तत्पश्चात् वाणी के द्वारा इन्हें अभिव्यक्त किया जाता है ।

यह उदानवायु की ही विशेष शक्ति है कि वह मानव मनोभावो को मूर्तरूप में प्रकाशित करती हैं, इसके अभाव में किसी भी प्रकार के विचारों या भावो का उन्नयन संभव नहीं है । वाणी के उन्मीलन में व्यावहारिक पद्धति इस प्रकार है-

सर्वप्रथम मन एवं मस्तिष्क के योग से विचारों का परिष्क्रमण होता है। मानव अपने भावो के सम्प्रेषण के लिए विधिवत् यत्न करता है । उसके इस कार्य के संपादन में सर्वप्रथम प्राणवायु का योगदान रहता है । तत्पश्चात उसे मूर्तरूप प्रदान करने के लिए उदान वायु को कार्य करना पड़ता है ।

उदान वायु अपनी विशिष्ट शक्ति द्वारा संगठित विचारो को उच्चारणोपयोगी संस्थानो के समीप ले जाता है और उसके द्वारा सम्प्रेषित भावो को कण्ठ, तालु आदि स्थान उसे अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं ।

ग- मस्तिष्क का आज्ञाचक्र और उससे सहस्त्रार तक ऊर्ध्वारोहण-

योग साधना में आज्ञाचक्र का विशेष महत्व है । यह स्थान शरीर में कहाँ स्थित है और इस स्थान का ध्यान करने से कैसी अनुभूति होती है ? उनका वर्णन हठयोगप्रदीपिका में इसप्रकार किया गया है-

भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते
ज्ञातव्यं तत्पदं तुर्यं तत्र कालो न विद्यते ।[1]

अर्थात मस्तिष्क में दो भौहों के मध्यस्थान को आज्ञाचक्र कहते हैं । आज्ञाचक्र ही शिव स्थान है । साधना द्वारा मन इसी स्थान पर निरुद्ध होकर

1-हठयोगप्रदीपिका-4/48

लय को प्राप्त होता है और तुरियातीत [समाधि] परमपद लाभ करता है। साधक का यही जानने योग्य स्थान है, यहाँ काल का अधिकार नहीं है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि काया [शरीर] स्थिर और गर्दन को समान और अचल धारण किये हुए दृढ होकर अपने नासिका के अग्र भाग को देख कर अन्य दिशाओं को न देखते हुए मेरे परायण हो।[1] यहाँ नासिकाग्र का अर्थ आज्ञाचक्र ही है इस बात की पुष्टि भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं गीता में करते हुए कहा है कि योगी अथवा भक्त अन्तकाल में योगबल से भृकुटि के मध्य में प्राण को अच्छी प्रकार स्थापन करके निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य पुरुष को परमात्मा को प्राप्त होता है।[3] श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार मृत्यु के समय आज्ञाचक्र में ध्यान करने से मूर्धा भेदन होकर परमात्मा की प्राप्ति होती है। ध्यानबिन्दु उपनिषद के अनुसार आज्ञाचक्र अमृत का स्थान है और यही विश्व का भी आधार है।[4] रुद्रयामल तन्त्र के अनुसार आज्ञाचक्र ही हंस स्थान है तथा यही बिन्दु स्थान भी कहा जाता है। इसी स्थान पर ध्यान करने का उपदेश मिलता है।[5] ज्ञान संकलनी तन्त्र में कहा गया है कि आज्ञाचक्र ही त्रिवेणी है जिसमें ध्यान लगाने से पाप का नाश होता है। ब्रह्म उपनिषद[7] में लिखा है कि आज्ञाचक्र में ब्रह्म अनुभूति होती है। योग शिखा उपनिषद[8] में कहा गया है कि आज्ञाचक्र में बिन्दु ज्योति के दर्शन होते हैं तथा वही विष्णु का सूक्ष्म रूप है। गन्धर्वतन्त्र पटल में कहा गया है कि आज्ञाचक्र को मुक्ति स्थान माना गया है

1-गीता-6/13

2- वही 8/10

3- श्रीमद्भागवत पुराण 2/2/21

4- ध्यान बिन्दु उपनिषद 2/21

5- रुद्रयामल तन्त्र 2/12

6- ज्ञानसंकलनी तन्त्र 12

7- ब्रह्म उपनिषद 32

8-योग शिखा उपनिषद 3/34

मध्य' तथा यहाँ ही परमात्मा का नियम है। इस आज्ञाचक्र में आत्मशक्ति कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से क्या लाभ होता है इसका उल्लेख शिव संहिता में इस प्रकार हुआ है। इस चक्र अर्थात आज्ञाचक्र में ऊपर तीन पीठ स्थित हैं- नाद, बिन्दु और शक्ति केन्द्र तथा इसी शिव संहिता में आगे कहा गया है कि जो फल या सिद्धि दूसरे शारीरिक केन्द्रों पर साधनकरने से प्राप्त होता है वह सब सिद्धियाँ केवल एक आज्ञाचक्र की साधना से प्राप्त हो जाती है।

प्राण के आध्यात्मिक स्वरूप को हम शरीर विधानशास्त्र की सहायता से सरलता से समझ सकते हैं। योगशास्त्र में मेरुदण्ड के अन्दर बाईं ओर इड़ा और दाहिने ओर पिंगला तथा बीच में मेरुमज्जा के मध्य में सुषुम्ना नामक नाड़ी का दर्शन मिलता है। मेरुमज्जा कटिप्रदेशस्थ मेरुदण्ड के कुछ अस्थिसमूह के पश्चात ही समाप्त हो जाती है। किन्तु धागे के समान एक सूक्ष्म पदार्थ लगातार नीचे की ओर गया है। सुषुम्ना यहाँ भी अत्यन्त सूक्ष्म रूप में स्थित है। इस नाड़ी का मुख नीचे बन्द रहता है। पास ही कटिप्रदेश नाड़ी जाल (Sacral plexus) है। शरीर विज्ञानानुसार यह त्रिकोणाकार है। यहाँ पर योगोक्त मूलाधार पद्म है। मेरुमज्जा के अन्दर विभिन्न नाड़ी जालों के केन्द्र स्थित हैं। ये केन्द्र ही योगोक्त चक्रों या पद्मों के रूप में लिए जा सकते हैं।

शरीर विज्ञान को चेतना के केन्द्र के रूप में वर्णित इन चक्रों की जानकारी नहीं है और न वह उन्हें सूक्ष्म प्राणवायु या सूक्ष्म प्राणशक्ति के रूप में ही जानता है। यद्यपि स्थूल शरीर और तत्संबंधी सारी विशेषतायें शरीर- विज्ञान का ही विषय है। अतः जो केवल शरीर विज्ञान का वाक्य लेते हैं, उन्हें प्रायः निराश रहने की ही संभावना है। इस विषय में सर आर्थर एवलॉन ने एक सुविदित थियोसोफी मतानुयायी लेखक का उल्लेख किया है जो इसे "चेतना केन्द्र" और कुण्डलिनी ज्योति कहता है।

1-शिवसंहिता 5/147, 153 श्लोक

उपर्युक्त पदमों में प्रथम मूलाधार, अन्तिम सहस्रार तथा नाभिचक्र (मणिपुर) ये तीन विशेष महत्वपूर्ण हैं। स्नायु प्रवाह दो प्रकार के हैं। एक केन्द्र की ओर से जाने वाले हैं जिन्हें अन्तर्मुखी अथवा ज्ञानात्मक कहते हैं। दूसरे केन्द्र से दूर ले जाने वाले, जिन्हें बहिर्मुखी अथवा गत्यात्मक कह सकते हैं। इनमें से प्रथम मस्तिष्क में सम्वाद पहुचाते हैं, दूसरे मस्तिष्क से अंगो में किन्तु अन्त में सब मस्तिष्क में मिल जाते हैं। मस्तिष्क में पहुँचकर "मेरुमज्जा" एक बल्ब की तरह के अण्डाकार पदार्थ में समाप्त होती है। इसे मेडुला कहते हैं। यह मस्तिष्क से असंलग्न रहकर वहाँ एक तरल पदार्थ में तैरा करता है इससे सिर पर चोट लगने पर भी उसकी शक्ति तरल पदार्थ में बिखर जाने से बल्ब को आघात नहीं पहुँचता है।

श्वास प्रश्वास को नियमित करने वाला स्नायुकेन्द्र ठीक वक्षस्थल की सीध में मेरुदण्ड में स्थित है। समस्त स्नायु प्रवाहों पर इसका कुछ न कुछ अधिकार है। अत: यह समस्त स्नायु प्रवाह को प्रभावित करता है।

भौतिक विज्ञानका विद्युत तत्व भी महत्वपूर्ण है, जिसे सब केवल एक गति के रूप में ही जानते हैं। अन्यान्य जागतिक गतियों से वह किस प्रकार विशिष्ट है - यह ज्ञेय है। समस्त परमाणुओं की अनवरत एक दिशा में गतिशील अवस्था ही वैद्युतगति है। यदि किसी स्थान में स्थित समस्त वायु परमाणु अविच्छिन्न एक ही ओर प्रवर्तित किये जाये तो वह स्थान महान विद्युदाधारयन्त्र (Battery) वत् बन जायेगा।

द्विविधस्नायु समूह पर विद्युत का प्रयोग करने से उन दोनो में धनात्मक तथा ऋणात्मक दो विपरीत शक्तियां उद्भूत होती हैं। विवेकानन्द कृत "राजयोग" में प्राण का आध्यात्मिक स्वरूप शीर्षक[1] अत: स्पष्ट है कि इच्छाशक्ति स्नायुप्रवाह में प्रवर्तित (परिणत) होकर विद्युतरूप बन जाती है। शरीर की समस्त गति एकाभिमुखी कर देते हैं, शरीर इच्छाशक्ति का महान् विद्युदागार बन जाता है। योगी का उद्देश्य उक्त प्रबल इच्छाशक्ति की उपलब्धि ही है।

1-प्राण का आध्यात्मिक स्वरूप-विवेकानन्द कृत राजयोग

प्राणायाम में भी श्वास प्रश्वास को नियन्त्रित करके समस्त शरीर परमाणुओं मे एकाभिमुखी गति उत्पन्न की जाती है जब तक सब ओर भागने वाला मन एकाग्र होकर सबल इच्छाशक्ति में परिवर्तित होता है, तब स्नायु प्रवाह में भी विद्युद्वत गति उत्पन्न होती है । इस प्रकार प्राणायाम द्वारा श्वास प्रश्वास केन्द्र को अधिकृत करके उसकी सहायता से शेष केन्द्रों को भी नियंत्रित किया जाता है । योगोक्त प्राणायाम साधना का उद्देश्य मूलाधारस्थ कुण्डलिनी को जागृत करना है । मूलाधार समस्त जाग्रदवस्था में बाह्य विषयाभिघात जन्य प्रवाह शरीर के किसी केन्द्र में पहुँचने पर 'प्रतिक्रिया' होती है जिसका फल स्थिर केन्द्रों (Automatic centres) में सामान्य गतिमात्र है किन्तु चेतन केन्द्रों (Conscious centres) में यह गति अनुभव के बाद होती है । प्रत्येक प्रतिक्रिया से उत्पन्न संवेदनायें शरीर के अन्दर संचित है । उन्हीं के अभिघात में स्मृति, स्वप्नादि मुद्ध प्रक्रियायें हुआ करती हैं ।

जिस स्थान पर मूलाधार स्थित है उसे दीर्घकालीन चिन्तनोपरान्त उष्ण होते देखा जाता है ऐसा शरीर विज्ञानवेत्ताओं का अनुभव है । अतः गतिप्रवाहों की अवशिष्ट संस्कार समष्टि के संचय स्थल को ही मूलाधार कहते हैं । "सर्पेन्ट पावर" में सर आर्थर एवलान ने इसे (मूलाधार को) चतुः परिमाण ज्योतिकेन्द्र के सदृश बतलाया है तथा संस्कारों के संग्रहस्थल को "भौतिक परमाणुओं से निर्मित सघन जाल कहा है, जबकि वे लिखते हैं – अग्निकेन्द्र चतुःपरिमाणः" वाले ज्योतिष्केन्द्र से सादृश्य रखता है परन्तु उनके मध्य में भौतिक परमाणुओं में निर्मित एकहरी पर्त का अत्यन्त घना बुना हुआ जाल है, जो स्तरों के बीच पारस्परिक व्यवहार को समय से पूर्व ही विकसित होने से रोकता है ।

मूलाधार में स्थित पूर्वोक्त कुण्डलिनीकृत क्रियाशक्ति का अभिधान कुण्डलिनी है । इसका उत्थापन दीर्घकालीन धारणा, ध्यानादि की साधना के पश्चात् होता है । विपुल शक्ति आगार कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर जब क्रमशः एक एक चक्र भेदन करती हुई सुषुम्ना मार्ग में भ्रमण करती है तो उत्तरोत्तर तीव्रातितीव्र प्रतिक्रिया होती है । विभिन्न केन्द्रों के अभिघात से उत्पन्न तत्कालीन प्रतिक्रिया जाग्रतावस्था

से भी अनन्तगुनी प्रबल होती है । अन्ततः समस्त ज्ञान एवं अनुभवों के केन्द्रभूत सहस्त्रार में इस शक्तिपुंज के प्रबुद्ध होने पर, मस्तिष्क तथा उसकी अनुभूतियों के सम्बद्ध प्रत्येक अणु परमाणु प्रतिक्रिया करने लगता है । इस समय मस्तिष्क से ज्ञान का पूर्ण आलोक एवं आत्मानुभूति का स्फुरण होता है । योगी की सूक्ष्म या कारण जगत् का भी सम्यक् ज्ञान हो जाता है । उसके लिए इस अवस्था में कुछ भी अज्ञेय नहीं रह जाता है । यही प्राणशक्ति का चमत्कार है । मूलाधार समस्त शक्तियों का आगार है ।[1]

इस शक्ति को कुण्डलिनी जागृत करके सहस्त्रार में पहुचाना ही योग से साध्य है। यह कुण्डल के आकार में मूलाधार में स्थित है अतः इसे कण्डलिनी कहते हैं । जब कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर श्रेणीभूत षटचक्रों को एक एक कर भेदन करतीहुई ऊर्ध्वगमन करती है तो उत्तरोत्तर दिव्य ज्ञान का उद्घाटन तथा अद्भुत शक्तियों का स्फुरण होता है । मूलाधार से एक एक करके षटचक्रभेदन से सहस्त्रार में पहुचना होता है । इन चक्रों के साथ क्रमशः भुः भुवः स्वः आदि उत्तरोत्तर उच्च लोकों का संबंध है । इन लोकों में ही जीव की आध्यात्मिक अवस्थानुसार गति होती है । आध्यात्मिक उत्कर्ष से क्रमशः शरीराभिमान का परित्याग होता है । अभिमान के त्याग के साथ साथ उत्तरोत्तर उच्चतर लोकों की प्राप्ति होती है । निरभिमानता की प्रत्येक अवस्था अनुसार ही उच्च से उच्चतर लोको का संबंध है । मूलाधार आदि चक्र भेदन के साथ साथ पार्थिव आप्य, तेजस आदि अभिमान के त्याग के साथ साथ आज्ञाचक्र में प्रवेश होता है, फिर सहस्त्रार में पहुँच होती है । सहस्त्रार में सत्यलोक या ब्रह्मलोक है, ऐसा शास्त्रों का कथन है । यहाँ पहुँचकर ज्ञान का प्रसाद प्राप्त होता है और योगी अपने नित्य, मुक्त, स्वभाव की उपलब्धि करके आनन्द विभोर हो जाता है।

1-पातंजलि योगसूत्र का तुलनात्मक और विवेचनात्मक
अध्ययन-डा० नलिनी शुक्ला

इसके लिए सुषुम्ना को जीतना अनिवार्य है । इड़ा और पिंगला मेरुमज्जा मध्यस्थ ज्ञानात्मक एवं कर्मात्मक स्नायु समूह स्तम्भ ही हैं । इन्हीं दोनों नाड़ियों से मुख्यत: अन्तर्मुखी बहिर्मुखी शक्ति प्रवाह प्रवाहित होते हैं और ये मस्तिष्क में बिजली के तार की भाँति कार्य कर रहे हैं । इस शक्ति प्रवाह को बिना स्नायु के ही सुषुम्ना के मध्य से बेतार के तार की भाति प्रवाहित करने पर इस समस्या की मीमांसा हो जाती है ।

प्राण जगत् उत्पत्ति की कारणस्वरूप, अनन्त, सर्वव्यापी विक्षेपकारी शक्ति है । बाह्याभ्यन्तर समस्त शक्तियों की मूल अवस्था प्राण है ।

प्रत्येक गति गुरुत्वाकर्षण या चुम्बक शक्ति स्नायविक शक्ति प्रवाह विचारशक्ति, विविध शारीरिक क्रियाशक्ति सब कुछ प्राण का ही प्रकाश है । उच्चतम विचारशक्ति से लेकर सामान्यतम शारीरिक शक्तियाँ प्राण की ही विकसित अवस्थायें हैं । विविध शक्तियों में परिणत प्राण तत्व का यथार्थ ज्ञान और संयम ही प्रकृत प्राणायाम है । प्राणायाम साधना का उद्देश्य सम्पूर्ण प्रकृत के वशीकरण की शक्ति को प्राण की सामान्य शक्ति में पर्यवसित या सीमित किया जा सकता है । प्राणजित योगी अपने मन पर ही नहीं, अपितु प्रत्येक व्यक्ति के मन पर विजयप्राप्ति की क्षमता रखता है, क्योंकि प्राण ही सम्पूर्ण शक्तियों का मूल है ।

मन: शक्ति से आरोग्य (Mind healing) विश्वास से आरोग्य प्रेततत्व विद्या ईसाई विज्ञान, वशीकरण विद्या आदि के मूल में भी ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्राण शक्ति ही कार्य कर रही है । भेद केवल इतना है कि उक्त विद्याओं के प्रयोगकर्ता इस प्राण शक्ति के स्वरूप से अनभिज्ञ हैं, अत: उसे नवीन आविष्कार समझते हैं । मनोवृत्ति प्राण की सूक्ष्मतम एवं उच्चतम अभिव्यक्ति है । तेज अथवा शक्ति के प्रत्येक विकास प्राणसंयम जन्य ही है । प्राण के विविध प्रकाशों को जीतकर उसे यथेच्छ रूप से चलाना राजयोग का उद्देश्य है। योगविद्या का लक्ष्य अल्पकाल में आत्मोन्नति की गति तीव्र करके मुक्ति प्राप्त करना है । यह कार्य एकाग्रता पूर्वक साध्य है । एकाग्रता की शक्ति प्राप्ति का विज्ञान ही राजयोग है ।

मन को उत्तरोत्तर से उच्चतर स्पन्दन विशिष्ट बनाना ही योगोक्त समाधि है। जब प्राणायाम से बाह्य साधनों द्वारा प्राण के स्थूल रूपों पर विजय प्राप्त की जाती है तब उसे भौतिक अथवा पदार्थ विज्ञान कहते हैं। जब प्राणायाम क्रिया में प्राण की मानसिकशक्तियों को मानसिक उपायों द्वारा संयम किया जाता है, तब वह राजयोग कहलाता है। [4-आई0के0टैमनी (Science of yoga) के अनुसार प्राणों के माध्यम के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से द्रव्य एवं शक्ति का संबंध असंभव है, प्राण जो व्यक्तिकरण के समस्त क्षेत्रों में विद्यमान है एक ओर यदि द्रव्य एवं शक्ति का संबंध सूत्र है, तो दूसरी ओर चेतनता एवं बुद्धि का भी संयोजक है।

प्राण का आध्यात्मिक स्वरूप क्याहै, इसे हम शरीर विधान शास्त्र (Physiology) की सहायता से बड़े सरल ढंग से समझ सकते हैं। योगशास्त्र में मेरुदण्ड के अन्दर बाईं ओर इड़ा और पिंगला तथा बीच में मेरुमज्जा कटिप्रदेशस्थ मेरुदण्ड के कुछ अस्थिसमूह के पश्चात ही समाप्त हो जाती है। किन्तु धागे के समान एक सूक्ष्म पदार्थ लगातार नीचे की ओर गया है। सुषुम्ना यहाँ भी अत्यन्त सूक्ष्म रूप में स्थित है। इस नाड़ी का मुँह नीचे बन्द रहता है। पास में कटिप्रदेशस्थ नाड़ी जाल है। शरीर विज्ञानानुसार यह त्रिकोणाकार है। यही पर योगोक्त मूलाधार पद्म है। मेरुमज्जा के अन्दर विभिन्न नाड़ी जालों के केन्द्र स्थित हैं। ये केन्द्र भी योगोक्त चक्रों या पद्मों के रूप में लिए जाते हैं।

शरीर विज्ञान की चेतना के केन्द्र में रूप में वर्णित इन चक्रों की जानकारी नहीं है और न वह उन्हें, सूक्ष्म प्राणवायु या सूक्ष्म प्राणशक्ति के केन्द्र के रूप में ही जानता है। यद्यपि स्थूल शरीर और तत्संबंधी सारी विशेषतायें शरीर विज्ञान का ही विषय है। अतः जो केवल शरीर विज्ञान का आश्रय लेते हैं, उन्हें प्रायः निराश रहने की ही संभावना है।

उपर्युक्त पद्मों में से प्रथम मूलाधार अन्तिम सहस्त्रार तथा नाभिचक्र ये तीन विशेष महत्वपूर्ण हैं। स्नायु प्रवाह दो प्रकार के हैं एक केन्द्र की ओर

ले जाने वाले हैं जिन्हे अन्तर्मुखी अथवा ज्ञानात्मक कहते हैं । दूसरे केन्द्र में दूर से दूर ले जाने वाले, जिन्हे बहिर्मुखी अथवा गत्यात्मक कह सकते हैं । इनमें से प्रथम मस्तिष्क में सम्वाद पहुचाते हैं दूसरे मस्तिष्कके अंगो में । किन्तु अन्त में सब मस्तिष्क में मिल जाते हैं । मस्तिष्क में पहुँचकर मेरुमज्जा एक "बल्बो की तरह के अण्डाकारपदार्थ में समाप्त होती है । इसे मेडला कहते हैं । यह मस्तिष्क से असंलग्न रहकर वहाँ एक तरल पदार्थ में तैरा करता है । इससे सिर पर चोट लगने परभी उसकी शक्ति तरल पदार्थ में बिखर जाने से "बल्ब" को आघात नहीं पहुँचता है।

भौतिक विज्ञान का 'विद्युत तत्व भी महत्वपूर्ण है जिसे सब केवल एक गति के रूप में ही जानते हैं । अन्यान्य जागतिक गतियों मे वह किस प्रकार विशिष्ट है यह ज्ञेय है समस्त परमाणुओं की अनवरत एक दिशा में गतिशील अवस्था ही विद्युतगति है । यदि किसी स्थान में स्थित समस्त वायु परमाणु अविच्छिन्न एक ही ओर प्रवर्तित किये जाये तो वह स्थान महान विद्युदाधारयन्त्र (Battery) वत बन जायेगा ।

द्विविध स्नायु समूह पर विद्युत का प्रयोग करने से उन दोनों में धनात्मक तथा ऋणात्मक दो विपरीत शक्तियाँ उद्भूत होती हैं । अतः स्पष्ट है कि इच्छाशक्ति स्नायु प्रवाह मेंपरिणत होकर विद्युत बन जाती है । शरीर की समस्त गति एकाभिमुखी कर देने से शरीर इच्छाशक्ति का विद्युदगार बन जाता है ।

प्राणायाम में भी श्वास प्रश्वास को नियंत्रित करके समस्त शरीर परमाणुओं में एकाभिमुखी गति उत्पन्न की जाती है । जब सब ओर भागने वाला मन एकाग्र होकर सबल इच्छाशक्ति में परिवर्तित होता है तब स्नायु प्रवाह में भी विद्युतवत गति उत्पन्न होती है । इस प्रकार प्राणायाम द्वारा श्वास प्रश्वास केन्द्र को अधिकृत करके उसकी सहायता से शेष केन्द्रो को भी नियुक्त किया जाता है । योगोक्त प्राणायाम साधना का उद्देश्य मूलाधारस्थ कुण्डलिनी को जागृत करना है । मूलाधार समस्त शक्तियो का आगार है । इस शक्ति को कुण्डलिनी जागृत

करके, सहस्त्रार में पहुंचाना ही योग से साध्य है । जब कुण्डलिनी उद्बुद्ध होकर श्रेणीभूत षटचक्रों को एक एक कर भेदन करती हुई ऊर्ध्वगमन करती है तो उत्तरोत्तर दिव्यज्ञान का उद्घाटन तथा अद्भूत शक्तियों का स्फुरण होता है । अन्त में षटचक्र भेदन के पश्चात कुण्डलिनी सहस्त्रार में प्रविष्ट हो जाती है, जब योगी अपने नित्यामुक्त स्वभाव की उपलब्धि करके आनन्द विभोर हो जाता है ।

इसके लिए सुषुम्ना को जीतना अनिवार्य है। इड़ा और पिंगला मेरुमज्जा मध्यस्थ ज्ञानात्मक एवं कर्मात्मक स्नायु समूह स्तम्भ ही है,। इन्ही दोनों नाड़ियों से मुख्यतः अन्तर्मुखी बहिर्मुखी शक्तिप्रवाह प्रवाहित होते हैं और ये मस्तिष्क में बिजली के तार की भांति कार्य कर रहे हैं । इस शक्ति प्रवाह को बिना स्नायु के ही सुषुम्ना के मध्य से बेतार के तार की भांति प्रवाहित करने पर इस समस्या की मीमांसा हो जाती है ।

जाग्रतावस्था में बाह्य विषयाभघात जन्य प्रवाह शरीर के किसी केन्द्र में पहुँचने पर प्रतिक्रिया होती है, जिसका फल स्थिर केन्द्रों में सामान्य गतिमात्र है किन्तु चेतन केन्द्रों में यह गति अनुभव के बाद होती है । प्रत्येक प्रतिक्रिया से उत्पन्न संवेदनायें शरीर के अन्दर संचित है । उन्ही के अभिघात से स्मृति स्वप्नादि मृदु प्रक्रियायें हुआ करती हैं ।

जिस स्थान परमूलाधार स्थित है, उसे दीर्घकालीन चिन्तनोपरान्त क्षुण्ण होते देखा जाता है ऐसा शरीर विज्ञान वेत्ताओं का अनुभव है । अतः गतिवाहों की अवशिष्ट संस्कार समष्टि के संचयस्थल को ही मूलाधार कहते हैं ।

मूलाधार में स्थित पूर्वोक्त कुण्डलिनीकृत क्रियाशक्ति का अभिधान कुण्डलिनी है । इसका उत्थापन दीर्घकालीन धारणा, ध्यान आदि की साधना के उपरान्त होता है । विपुल शक्ति आगार कुण्डलिनी प्रबुद्ध होकर जब क्रमशः एक एक चक्र भेदन करती हुई सुषुम्ना मार्ग में भ्रमण करती है तो उत्तरोत्तर तीव्रातितीव्र प्रतिक्रिया होती है । विभिन्न केन्द्रों के अभिघात से उत्पन्न

तत्कालीन प्रतिक्रिया जाग्रतावस्था से भी अनन्तगुणी प्रबल होती है । अन्ततः समस्त ज्ञान एवं अनुभवों के केन्द्रभूत सहस्त्रार में इस शक्ति पुंज के प्रबुद्ध होने पर मस्तिष्क तथा उसकी अनुभूतियों के संबंध प्रत्येक अणु-परमाणु प्रतिक्रिया करने लगता है । इस समय मस्तिष्क में ज्ञान का पूर्ण आलोक एवं आत्मानुभूति का स्फुरण होता है । योगी को सूक्ष्म या कारण जगत् का भी सम्यक ज्ञान हो जाता है । उसके लिए इस अवस्था में कुछ भी अज्ञेय नहीं रह जाता है यहीं प्राणशक्ति का चमत्कार है ।

=======

1- साइंस आफ योग-आई०के०टैमनी